अध्याय 18

# भारत की मृदा

**इस अध्याय में आप सीखेंगे कि:**

- मृदा की संरचना एवं उसका वर्गीकरण क्या है। भारत की प्राकृतिक वनस्पतियों से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं के बारे में क्या जानकरी प्राप्त होगी। साथ ही साथ भारत में वन रोपण योजनाएँ कौन-कौन सी हैं।

## परिचय (Introduction)

भू-पृष्ठ की सबसे ऊपरी परत, जो पौधों को उगने व बढ़ने के लिए जीवांश तथा खनिजांश प्रदान करती है, मृदा या मिट्टी कहलाती है। मृदा निर्माण की प्रक्रिया को मृदाजनन (Pedogenesis) कहते हैं। अपक्षय तथा अपरदन के कारक भू-पृष्ठ की चट्टानों को तोड़कर उसका चूर्ण बना देते हैं। इस चूर्ण में वनस्पति तथा जीव जन्तुओं के गले-सड़े अंश भी सम्मिलित हो जाते हैं जिसे ह्यूमस कहते हैं। चट्टानों में उपस्थित खनिज तथा चूर्ण में मिला हुआ ह्यूमस मिलकर पेड़-पौधों को जीवन प्रदान करता है।

मृदा का निर्माण जलवायु द्वारा चट्टानों के विखण्डन के फलस्वरूप होता है जिनमें अनेक प्रकार के रासायनिक तत्व पाए जाते हैं। फलत: विभिन्न जलवायु और विभिन्न चट्टानों से बनी मृदा में न तो एकरूपता ही पायी जाती है और न सभी की उर्वराशक्ति ही एक-सी होती है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने भारत की मृदा को **8 वर्गों** में विभाजित किया है।

1. जलोढ़ मृदा
2. लाल मृदा
3. काली मृदा
4. लैटेराइट मृदा
5. पहाड़ी मृदा
6. लवणीय एवं क्षारीय मृदा
7. मरूस्थलीय मृदा
8. पीट अथवा जैविक मृदा

### जलोढ़ मृदा (Alluvial Soil)

उत्पत्ति—इस मृदा का निर्माण हिमालय से निकलने वाली मुख्य रूप से तीन बड़ी नदियों-सतलुज, गंगा तथा ब्रह्मपुत्र और उनकी सहायक नदियों द्वारा कांप मृदा लाए जाने और उत्तरी मैदान में जमा किए जाने से हुआ है।

**क्षेत्रफल एवं वितरण**—भारत का सर्वाधिक क्षेत्रफल इस मृदा के अन्तर्गत आता है। इसका क्षेत्र 7.7 लाख वर्ग कि.मी. है। इसका विस्तार उत्तर के विशाल मैदान, पूर्वी तथा पश्चिमी तटवर्ती मैदान तथा राजस्थान में एक संकरी पट्टी के रूप में पाया जाता है।

**विशेषताएँ**—कणों के आकार के अलावा इस मृदा को आयु के आधार पर भी विभाजित किया जाता है—प्राचीन जलोढ़क और नवीन जलोढ़क। प्राचीन जलोढ़क को बांगर और नवीन जलोढ़क को खादर कहते हैं। नवीन जलोढ़क प्राचीन जलोढ़क से अधिक उपजाऊ होती है।

जलोढ़क मृदा सामान्यता सबसे अधिक उपजाऊ होती है। इनमें साधारणतया पोटाश, फास्फोरिक अम्ल तथा चूना पर्याप्त मात्रा में होता है। लेकिन इनमें नाइट्रोजन तथा जैविक पदार्थों की कमी होती है। शुष्क प्रदेशों में उनमें क्षारीय अंश अधिक होता है।

### लाल और पीली मृदा (Red and Yellow Soil)

उत्पत्ति—ये मृदा अपक्षय के प्रभाव से प्राचीन रवेदार और परिवर्तित चट्टानों के टूट-फूट के कारण बनी हैं। यह अपने बनने के स्थान पर ही पड़ी रहती हैं। कहीं-कहीं मृदा में लोहा होने से इस मृदा का रंग लाल हो गया है। कहीं-कहीं इसका रंग भूरा, चाकलेटी, पीला अथवा काला भी हो

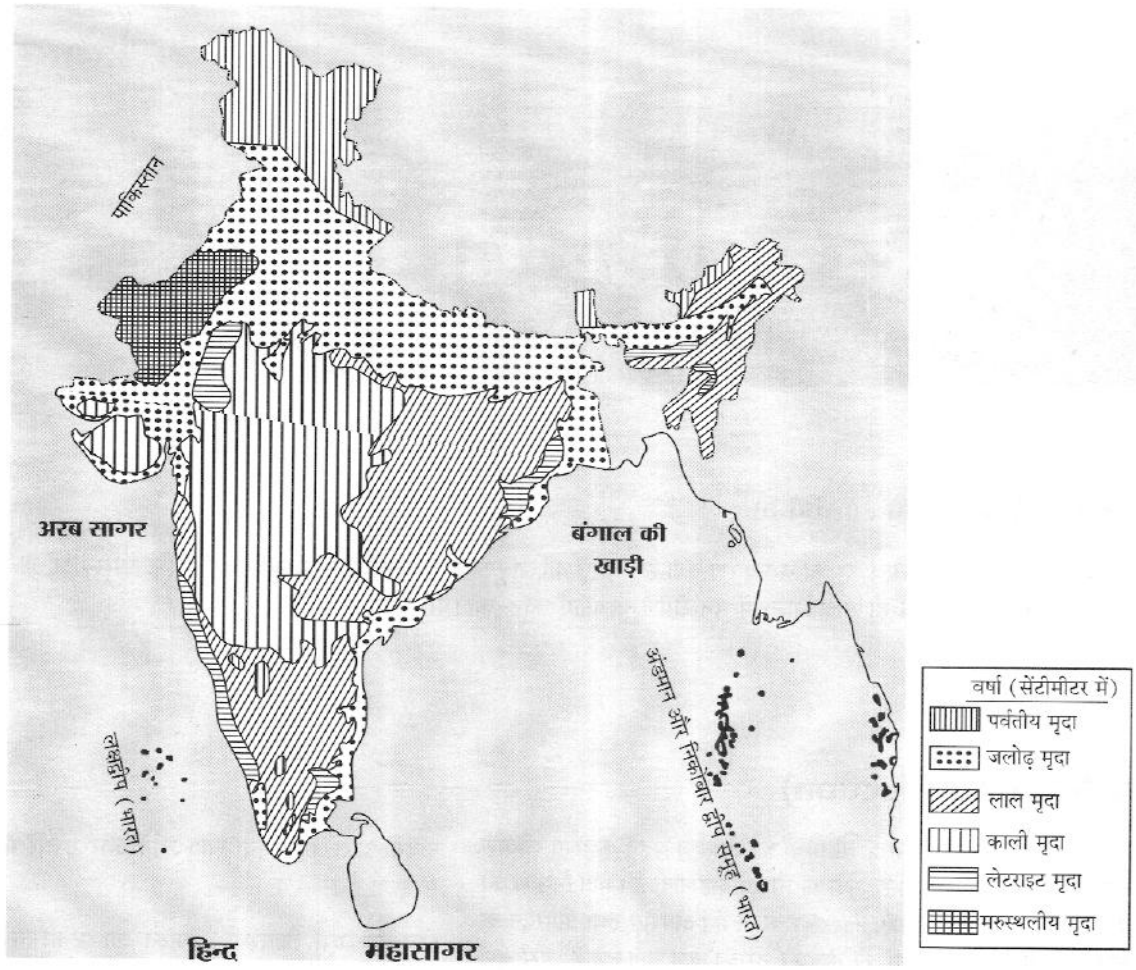


चित्र 18.1: भारत की मृदा

गया है क्योंकि इनमें मूल चट्टान से चाकलेट रंग वाले खनिज तत्व (जैसे, फैलस्पार, ऑलीविन) के महीन कण भी पाये जाते हैं। जहां कहीं यह मृदा बहुत ही छोटे-छोटे कणों की बनी है वहाँ यह काफी उपजाऊ है लेकिन दूसरे भागों में मृदा की तहों में जल न रुकने के कारण यह प्राय: बंजर रह गयी है।

**क्षेत्रफल एवं वितरण**—इस प्रकार की मृदा मध्य प्रदेश, दक्षिणी उत्तर प्रदेश, छोटा नागपुर का पठार एवं मेघालय में लगभग दो लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर पाई जाती है। यह मृदा आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, राजस्थान तथा दक्षिणी-पूर्वी महाराष्ट्र, कर्नाटक के कुछ भागों में भी मिलती है।

**विशेषताएं**—अनेक प्रकार की चट्टानों से बनी होने के कारण इनमें गहराई, कणों की संरचना और उर्वराशक्ति में भिन्नता पायी जाती है। ये मृदा अत्यन्त रंध्रयुक्त (Porous) होती हैं और अत्यन्त बारीक तथा गहरी होने पर ही उपजाऊ होती हैं। अत: शुष्क अथवा ऊंचे मैदानों में यह उपजाऊ नहीं होतीं। यहां पर यह हल्के रंग की, पथरीली और कम गहरी होती हैं। निचले भागों की मृदा गहरे लाल रंग की, अधिक गहरी और उपजाऊ होती है जिसमें कपास, गेहूं, धान, अलसी, आलू, टमाटर, दालें और मोटे अनाज पैदा किये जाते हैं।

इस मृदा में लोहा, ऐलुमिनियम और चूना यथेष्ट होता है, किन्तु नत्रजन, फॉस्फोरस और वनस्पति का अंश कम होता है।

## काली अथवा रेगुर मृदा (Black and Red Soil)

**उत्पत्ति**—ये मृदा ज्वालामुखी के दरारी विस्फोट से निकले पेठिक लावा के जम जाने से बनी हैं। अत: यह चिकनी, लावा प्रधान व विशेष उपजाऊ मृदा हैं।

**क्षेत्रफल एवं वितरण**—इस प्रकार की मृदा 12° से 25° उत्तरी अक्षांश और 37° से 80° पूर्वी देशान्तरों के बीच पायी जाती हैं। ये मृदा गुजरात से अमरकंटक और बेलगांव से गुना तक लगभग 5 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली हैं। ये मृदा महाराष्ट्र के अधिकांश भाग विदर्भ, गुजरात के मध्यवर्ती भाग और पश्चिमी मध्य प्रदेश, उड़ीसा के दक्षिणी भाग, कर्नाटक के उत्तरी जिलों, आन्ध्र प्रदेश के दक्षिणी और तटवर्ती भाग, तमिलनाडु, राजस्थान तथा

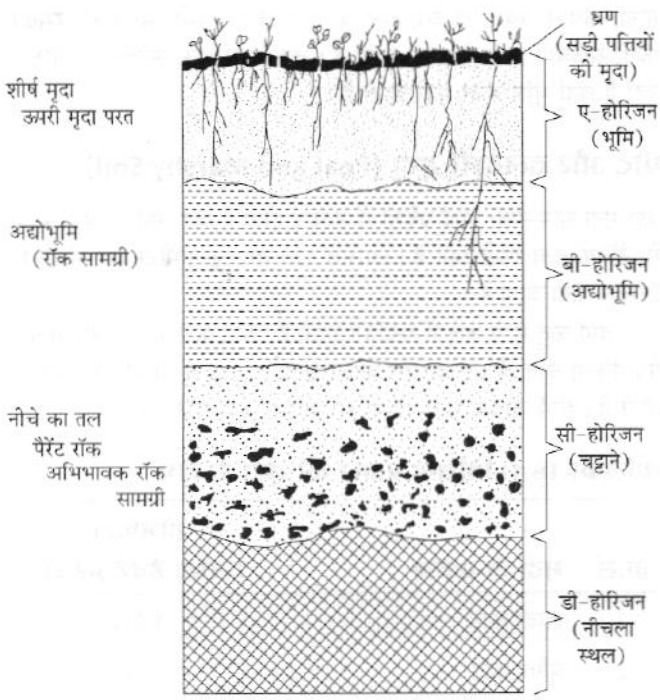


**चित्र 18.2: भारत की मृदा**

उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड सम्भाग में मिलती हैं। इनका कुल क्षेत्रफल 5 लाख वर्ग किलोमीटर से कुछ अधिक है।

महाराष्ट्र में इस मृदा के क्षेत्र का सबसे अधिक विस्तार है। यहां इनका निर्माण पैठिक लावा के प्रवाह से हुआ है अत: यह दक्कन ट्रेप (Deccan Trap) से बनी मृदा भी कहलाती है। पठारी ढालों पर यह हल्के रंग की व पतली तथा निचले भागों में यह गहरी तथा उपजाऊ होती है। नर्मदा, तापी, गोदावरी और कृष्णा नदियों की घाटियों में यह 60 मीटर से भी अधिक गहरी पायी जाती है। इस मृदा में चूने की मात्रा अधिक होती है। गुजरात के सूरत और भड़ूँच जिलों में भी यह मृदा पायी जाती है।

मध्य प्रदेश में नर्मदा की घाटी में गहरी और काले रंग की तथा छिछली काली मृदा मिलती है। इसमें कपास का उत्पादन अधिक होता है। कर्नाटक में काली मृदा में नमक के कण भी मिले रहते हैं।

**विशेषताएँ**—इसका रंग गहरा काला और कणों की बनावट घनी एवं महीन होती है। इसमें अधिक देर तक जल ठहर सकता है। किन्तु चिकनी होने के कारण सूख जाने पर इसमें दरारें पड़ जाती हैं। अत: हल चलाना कठिन हो जाता है। पठारी ढालों पर यह कम उपजाऊ होती है अत: वहां इसमें गेहूं, कपास, गन्ना, केला, ज्वार, चावल, तम्बाकू, रेंडी, मूंगफली, सोयाबीन, फल, सब्जियां आदि पैदा किए जाते हैं। इस मृदा में चूना, पोटाश, मैग्नीशियम, ऐलुमिना तथा लोहा पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। किन्तु फॉस्फोरस, नेत्रजन तथा जीवांशों (ह्यूमस) का अभाव पाया जाता है।

## लैटेराइट मृदा (Laterite Soils)

**उत्पत्ति**—इन मृदा का निर्माण शुष्क और तर मौसम वाले क्षेत्रों में होता है। ये मिट्टियां चट्टानों की टूट-फूट एवं रासायनिक क्रिया से बनती हैं।

**क्षेत्रफल एवं वितरण**—ऐसी मृदा लगभग 1.22 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली है। यह मृदा अपेक्षतया कम उपजाऊ होती है। क्योंकि इस मृदा में चट्टानों के टुकड़े एवं मोटे कण विशेष रूप से पाये जाते हैं। इसका विस्तार निम्न प्रकार से है—

तमिलनाडु में पहाड़ी भागों और निचले क्षेत्रों में दोनों में ही लैटेराइट मृदा मिलती है। निचले भागों में इस मृदा में चावल, कपास, गेहूं, दालें, मोटे अनाज, सिंकोना, चाय, कहवा आदि बोया जाता है। कर्नाटक के कुर्ग जिले में यह मृदा सारे जिले में बिखरी मिलती है। महाराष्ट्र में रत्नागिरि, कोलावा और सतारा जिलों में पायी जाती है। केरल राज्य में चौड़े समुद्रीतट और पूर्वी भागों के बीच में इस प्रकार की मृदा मिलती है। पश्चिम बंगाल में बैसाल्ट और ग्रेनाइट पहाड़ियों के बीच-बीच में लैटेराइट मृदा पायी जाती है। उड़ीसा के पठार के ऊपरी भागों और घाटियों में यह मृदा मिलती है।

**विशेषताएं**—ये मृदा कई प्रकार की होती हैं। पहाड़ियों पर पायी जाने वाली मृदा शुष्क व कम उपजाऊ होती हैं और इसमें अधिक समय के लिए नमी नहीं ठहर पाती। इसके विपरीत, निम्न भूमियों पर इस मृदा के साथ नम, चिकनी और दोमट मृदा मिली पायी जाती है। इसमें काफी समय तक के लिए नमी रहती है। इस मृदा में चूना, फॉस्फोरस और पोटाश कम पाया जाता है। इसमें एल्यूमिनियम और लोहे की प्रधानता होती है। यह मृदा लीचिंग प्रक्रिया से प्रभावित होती है। इस पर मूँगफली, काजू, रबर, कॉफी और मसालों की खेती की जाती है।

कर्नाटक एवं महाराष्ट्र के पश्चिमी आर्द्र प्रदेशों में इस मृदा में काजू के बगीचे, तमिलनाडु में ऊंचे पश्चिमी घाट की पहाड़ियों पर चाय एवं केरल व दक्षिणी कर्नाटक के घाट पर कहवा भी पैदा किया जाता है। यहां टैपिओका, विशेष घास एवं अन्य उष्णकटिबंधीय फसलें भी पैदा की जाती हैं।

## पहाड़ी मृदा (Mountain Soils)

**क्षेत्रफल एवं वितरण**—हिमालय पर्वत पर पायी जाने वाली मृदा नयी अवर्गीकृत पहाड़ी मृदा होती है। अधिकांशत: यह मृदा पतली, दलदली और छिद्रमय होती हैं। नदियों की घाटियों में ये अधिक गहरी पायी जाती हैं। हिमालय के दक्षिणी ढाल अधिक सीधे होने के कारण उन पर उत्तरी ढालों की अपेक्षा अधिक मृदा जमा नहीं हो पाती। हिमालय पर्वत की मृदा कई प्रकार की है। पहाड़ी ढालों की तलहटी में छिद्रमय बलुई एवं कम उपजाऊ टर्शरी मृदा (Tertiary Soil) पायी जाती है। किन्तु पश्चिमी हिमालय के ढालों पर सामान्य उपजाऊ श्रेणी की बलुआ मृदा मिलती है। मध्य हिमालय के क्षेत्र में पायी जाने वाली मृदा वनस्पति अंशों की अधिकता के कारण अधिक उपजाऊ है। अच्छी वर्षा होने पर इस मृदा में द्वार और दून की घाटियों, कांगड़ा, कुल्लू आदि जिलों में अच्छी किस्म की चाय, चावल एवं फल पैदा होते हैं। कश्मीर की घाटी फलों, मेवों, केसर एवं फूलों की

कृषि के लिए प्रसिद्ध है। यहां भी उपजाऊ मृदा के जमाव निम्न ढालों पर पाये जाते हैं।

## लवणीय तथा क्षारीय मृदा (Saline and Alkaline Soils)

**उत्पत्ति**—शुष्क और अर्ध-शुष्क भागों तथा दलदली व अधिक सिंचित क्षेत्रों में इस प्रकार की मृदा पायी जाती हैं। इन्हें कई नामों से पुकारा जाता है जैसे—थूर, ऊसर, कल्लर, रांकड़, रेह और चोपन। शुष्क भागों में अधिक सिंचाई के कारण एवं अधिक वर्षा वाले भागों में जल प्रवाह दोषपूर्ण होने तथा जल रेखा ऊंची होने से इन मृदा का जन्म होता है, क्योंकि भूमि की निचली परतों से क्षार या लवण पुन: वाष्पीय क्रिया (Capillary action) द्वारा ऊपरी परतों तक पहुंच जाता है। इससे मृदा में सोडियम, कैल्सियम और मैग्नीशियम लवणों की मात्रा अधिक होने से ये मृदा प्राय: अनुत्पादक हो जाती हैं।

उत्तरी भारत के सभी उपजाऊ मैदानों में पाई जाने वाली क्षारयुक्त, नमकीन या कल्लर मृदा मुख्यत: दोषपूर्ण सिंचाई, जलाधिक्य का ही परिणाम है। इससे भीतरी परतों का नमक तेज़ी से ऊपर आकर सतही परत को क्षारयुक्त, कठोर, बंजर या कृषि अयोग्य बना देता है।

**वितरण एवं क्षेत्रफल**—इस प्रकार की मृदा उत्तरी बिहार, उत्तर प्रदेश हरियाणा, पंजाब, राजस्थान और महाराष्ट्र राज्यों के लगभग 68,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रों में पायी जाती हैं।

**विशेषताएं**—नमकीन मृदा में अनेक प्रकार के खनिज लवण निरन्तर एकत्रित होते रहते हैं, किन्तु इसमें कैल्सियम और नेत्रजन का अभाव पाया जाता है। यह मृदा अत्यधिक अप्रवेश्य होती है। यदि इन मृदा में जिप्सम मिलाकर चूने की मात्रा कम की जाए तथा जल प्रवाह में सुधार किया जाये अथवा सीमित एवं नवीन फव्वारा विधि से सिंचाई की जाय, ऊंची जल रेखा को नालियां काटकर नीचा बनाया जाए और भूमि को निश्चित जिप्सम की मात्रा देकर सीमित सिंचाई की जाये तो इससे क्षार का अंश कम हो सकता है। इससे ऐसी मृदा पुन: उपजाऊ होने लगती हैं।

इन मृदा में जल अधिक समय तक के लिए नहीं रुक पाता किन्तु मृदा को उपचारित कर एवं खाद देकर चावल, गेहूं, कपास, केला, गन्ना, तम्बाकू और नारियल पैदा किये जाते हैं।

## मरुस्थलीय मृदा (Desert Soil)

इस प्रकार की मृदा शुष्क और अर्द्धशुष्क प्रदेशों में अरावली पर्वत और सिन्धु घाटी के मध्यवर्ती क्षेत्रों में विशेषत: पश्चिमी राजस्थान, उत्तरी गुजरात, दक्षिणी हरियाणा और पश्चिमी उत्तरी प्रदेश में मिलती है। इसका विस्तार क्षेत्र लगभग 1.44 करोड़ हेक्टेअर में है। यह मृदा प्रधानत: मध्यम व मोटे कण वाली बालू होती है। यह मृदा दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के साथ कच्छ के रन की ओर से उड़कर यहां धरातल पर जमा होती रही है। इसमें खनिज नमक भी पाये जाते हैं जो जल में शीघ्र घुल जाते हैं। बालू मृदा में नमी कम रहती है तथा वनस्पति के सड़े-गले अंश भी कम पाये जाते हैं। किन्तु सिंचाई किये जाने से यह उपजाऊ हो जाती है। सिंचाई के सहारे गेहूं, गन्ना, कपास, ज्वार, बाजरा, चना व अन्य दाले, सरसों, मूंगफली, रसदार फल, सब्जियां आदि पैदा की जाती हैं। जहां सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध नहीं है वहां भूमि बंजर पड़ी रहती है।

## पीट और दलदली मृदा (Peat and Marshy Soil)

पीट मृदा सामान्यत: आर्द्र प्रदेशों में उत्पन्न होती है जहां मृदा में बड़ी मात्रा में जैविक तत्व मिले रहते हैं। लगभग 150 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में इनका विस्तार पाया जाता है।

वर्षा ऋतु में ये जल में प्लावित रहती हैं। वर्षा के उपरान्त इनमें चावल पैदा किया जाता है। इनका रंग काला होता है तथा ये अत्यधिक अम्लीय होती हैं। इनमें जैविक तत्व 10 से 40 प्रतिशत तक होते हैं।

**तालिका 18.1: विभिन्न प्रकार की मृदा के क्षेत्र**

| क्र.सं. | मृदा के प्रकार | क्षेत्रफल (लाख हेक्टेअर में) |
|---|---|---|
| 1. | खादर कांप | 1,012 |
| 2. | बाँगर कांप | 89 |
| 3. | तटीय कांप | 85 |
| 4. | डेल्टा की कांप | 170 |
| 5. | नमकीन तथा क्षारीय कांप | 69 |
| 6. | मरुस्थलीय | 146 |
| 7. | गहरी काली मृदा | 69 |
| 8. | मध्यम काली मृदा | 186 |
| 9. | छिछली काली मृदा | 49 |
| 10. | काली मृदा (नमक तथा क्षार प्रभावित) | 69 |
| 11. | अवर्गीकृत काली मृदा | 125 |
| 12. | मिश्रित लाल तथा काली मृदा | 105 |
| 13. | लाल मृदा | 304 |
| 14. | लाल पथरीली मृदा | 16 |
| 15. | लाल-पीली मृदा | 178 |
| 16. | लैटेराइट मृदा | 101 |
| 17. | लैटेराइट और लैटोराइट मृदा | 20 |
| 18. | भूरी मृदा (पतझड़ वाले वनों की) | 16 |

(Continued)

| क्र.सं. | मृदा के प्रकार | क्षेत्रफल (लाख हेक्टेअर में) |
|---|---|---|
| 19. | भूरी मृदा | 36 |
| 20. | पहाड़ी मृदा | 24 |
| 21. | पोडसोल मृदा | 36 |
| 22. | वन की लैटेराइट मृदा | 465 |
| 23. | तराई की पहाड़ी मृदा | 57 |
| 24. | पर्वतीय घास के मैदानों की मृदा | 117 |

### भारतीय मृदा की विशेषताएं (Features of Indian Soils)

मृदा के उपर्युक्त विस्तृत विवेचन के आधार पर भारतीय मृदा की निम्न विशेषताएं हैं—

- अपनी रचना में भारतीय मृदा अनेक देशों की मृदा से भिन्न हैं क्योंकि ये बहुत पुरानी और पूर्णत: परिपक्व हैं।
- भारत की अधिकांश मृदा प्राचीन जलोढ़ हैं जो न केवल पैतृक चट्टानों के विखण्डन से ही बनी हैं, वरन् उनके निर्माण में जलवायु सम्बन्धी कारणों एवं जल परिवहन का भी हाथ रहा है।
- प्राय: सभी मृदा में नेत्रजन, जीवांश, वनस्पति अंश और खनिज लवणों की कमी पायी जाती है। फास्फेट तथा पोटाश की कमी सामान्यत: नहीं होती।
- मृदा के तापमान ऊंचे पाए जाते हैं। शीतोष्ण कटिबन्धीय मृदा की तुलना में यह 10°C से 15°C अधिक होता है। इससे चट्टानों के टूटते ही रासायनिक विघटन शीघ्र आरम्भ हो जाता है।
- पठारी एवं पहाड़ी भाग में मृदा का आवरण हल्का और फैला होता है जबकि मैदानी क्षेत्रों और डेल्टाई प्रदेशों में यह गहरा और संगठित होता है।
- निरन्तर खेती किये जाने से भारतीय मृदा की उर्वराशक्ति के नष्ट होने के साथ-साथ उनका अपरदन भी तेज़ी से होता जा रहा है।
- भारतीय मृदा तुलनात्मक दृष्टि से शुष्क होती हैं। अत: कृषि उत्पादन के लिए इनमें सिंचाई करना आवश्यक होता है।

## भूमि अपक्षरण/ कटाव की समस्या (Problem of Soil Erosion)

भारतीय मृदा की उर्वराशक्ति प्रतिवर्ष गिरती जा रही है। इसके अतिरिक्त कई भागों की मृदा बहती हुई कटकर समुद्र में चली जा रही हैं। अत: भूमि के अपक्षरण की यह समस्या भारत में बड़ी विषम है। मृदा के अपक्षरण को रेंगती हुई मृत्यु कहा जाता है। यह परिणाम भूमि तक ही सीमित नहीं है, किन्तु उन्हें मनुष्यों को भी भुगतना पड़ता है क्योंकि भूमि की उर्वराशक्ति नष्ट होने से भूमि की पैदावार क्षीण होती है। भूमि की सतह पर ही वनस्पतियों के लिये आवश्यक रासायनिक तत्व एकत्रित रहते हैं जिनसे पौधों को भोजन मिलता रहता है। यदि एक बार यह ऊपरी सतह नष्ट हो जाती है तो भूमि की उर्वराशक्ति भी क्षीण हो जाती है जिसके फलस्वरूप वहां किसी प्रकार की वनस्पति पैदा होना असम्भव हो जाता है। पिछले पचास वर्षों में देश के उप-पर्वतीय, अरावली प्रदेश, दक्षिणी पठारी भाग एवम् अधिकांश मैदानी भागों से वनों की अन्धा-धुन्ध कटाई की जाती रही है। इससे पानी एवं पवन द्वारा मृदा का अपरदन निर्बाध गति से निरन्तर बढ़ता रहा है।

### भूमि क्षरण के कारण (Causes of Soil Erosion)

भूमि क्षरण या मृदा के कटाव के अनेक कारण होते हैं यथा—

1. वर्षा ऋतु के आगमन से पूर्व मरुस्थलीय क्षेत्रें एवं नग्न कृषि क्षेत्रें पर भीषण गर्म आंधियाँ चलती हैं जो शुष्क भूमि की ऊपरी परत की ढीली मृदा को उड़ा ले जाती हैं। इस क्रिया द्वारा धरातल की ऊपरी परत का अपरदन होता रहता है और कालान्तर में यह क्षेत्र अनुपजाऊ बन जाते हैं।
2. कृषि के अवैज्ञानिक ढंग अपनाकर कृषक स्वयं मृदा के क्षरण को बढ़ाता है। ढालू क्षेत्र में समोच्च रेखाओं से, समानान्तर जुताई न करने से, दोषयुक्त फसल चक्र अपनाने से या आवरण फसलें गलत तरीके से बोने से मृदा का क्षरण बढ़ता है। हिमालय और नीलगिरि क्षेत्र में आलू की दोषयुक्त खेती किये जाने के कारण मृदा का क्षरण अधिक मात्रा में हुआ है।
3. पिछले पचास वर्षों से तेज़ी से बढ़ी आबादी एवं स्वतन्त्र भारत में वन उत्पादों की बढ़ती मांग के कारण निर्ममतापूर्वक वनों को काटा जाता रहा है। इस क्रिया से भूमि के रक्षात्मक तत्व तेज़ी से बहने वाले वर्षा जल के साथ घुलकर चले जाते हैं और वहां विशाल उजाड़ उत्पन्न हो जाते हैं। यमुना, चम्बल, माही और उनकी अनेक सहायक नदियों के किनारे भूमि का अपक्षरण निरन्तर गति से हो रहा है। इससे उपजाऊ क्षेत्र नष्ट होते जा रहे हैं। वनाच्छादित भूमि में जल तथा मृदा का ह्रास 3½ टन प्रति हेक्टेअर, चरागाह भूमि में 60 टन प्रति हेक्टेअर जल तथा 80 टन प्रति हेक्टेअर मृदा एवं आवरणहीन भूमि में 312 टन प्रति हेक्टेअर जल और 2,000 टन प्रति हेक्टेअर मृदा का ह्रास प्रतिवर्ष होता है।
4. अर्द्धशुष्क व चरागाह क्षेत्रों में रहने वाले निवासी असंख्य मात्रा में भेड़-बकरी आदि पशुओं को पालते रहते हैं जो भूमि की वनस्पति को अन्तिम बिन्दु तक चरकर उसे समाप्त कर देते हैं। यह ढीले भाग जल अथवा पवन के वेग के साथ बहकर भूमि को अनुपजाऊ बना देते हैं।

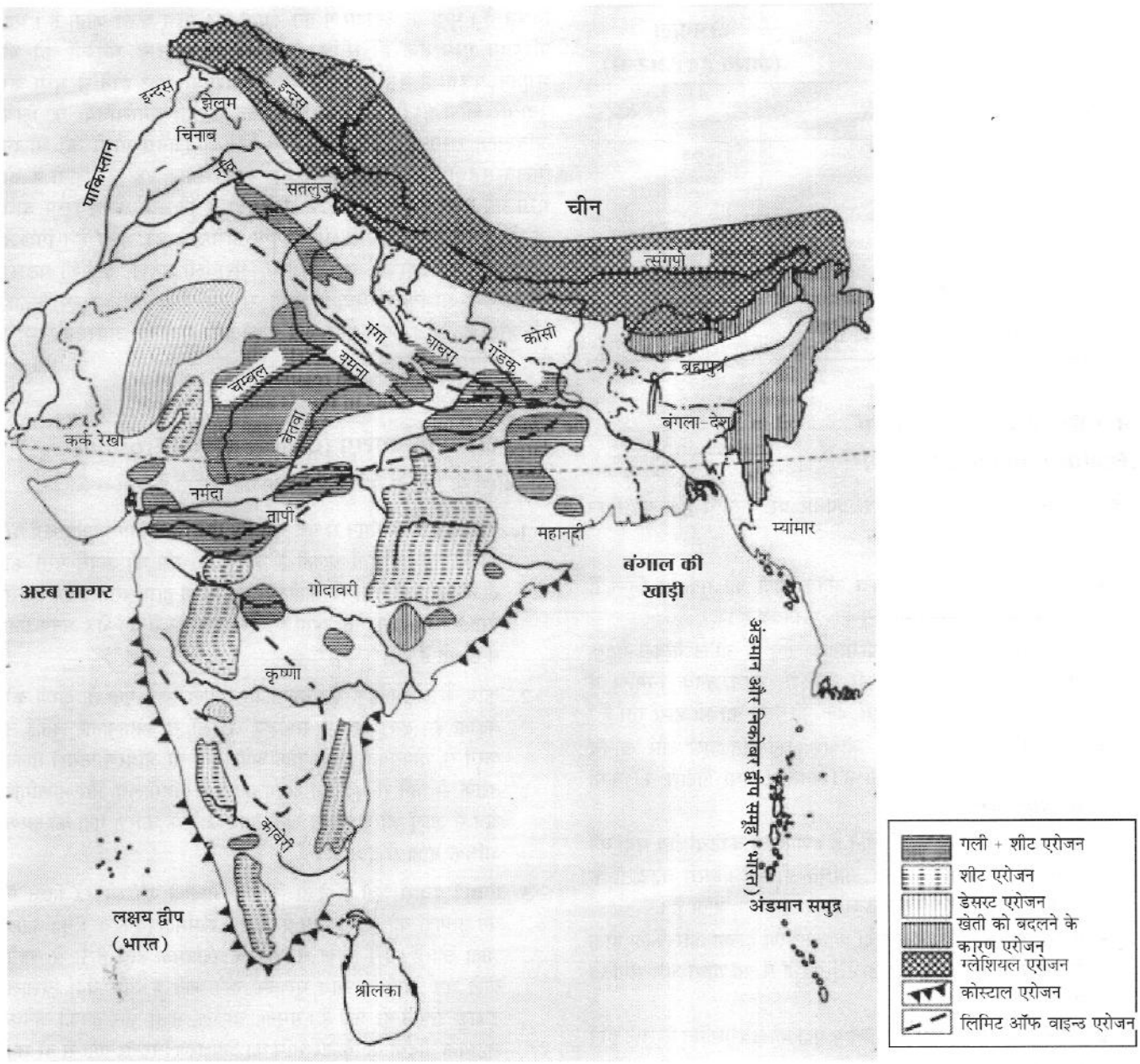


**चित्र 18.3: भारत के भूमि अपक्षरण के प्रमुख क्षेत्र**

5. अनेक क्षेत्रें के पहाड़ी ढालों पर (विशेषत: असम, नागालैंड, मेघालय, दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान, निचले हिमालय, उड़ीसा, मध्य प्रदेश आदि में) आदिवासियों द्वारा झूमिंग प्रणाली (Zhum cultivation) अथवा टोंग्या खेती के अन्तर्गत वनों को काटकर कृषि योग्य बनाया जाता था। इससे भी नग्न भूमि का तेज़ी से क्षरण होने लगता है, अब झूमिंग प्रणाली प्रतिबन्धित है।

## भूमि अपरदन के तीन प्रधान साधन होते हैं

### *जल द्वारा अपरदन (Erosion by Water)*

जल द्वारा अपरदन दो रूपों में होता है:

1. नालियों के रूप में,
2. स्तर के रूप में जल द्वारा अपरदन हिमालय की तलहटी के सभी क्षेत्रें, असम, बंगाल, बिहार, झारखण्ड, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, मध्य

प्रदेश और छत्तीसगढ़ में हो रहा है। ढालों पर वर्षा जल से क्षरण होता है तथा तटीय भागों में लहरों के द्वारा भूमि क्षरण होता है, जैसे—केरल में।

### *पवन द्वारा भूमि अपरदन (Erosion by Air)*

मरूस्थलीय भागों में पवन द्वारा मृदा को उड़ा लिया जाता है जिससे उपजाऊ मृदा नष्ट हो जाती है। पवन द्वारा अपरदन मुख्य रूप से राजस्थान में होता है।

### *हिम द्वारा भूमि अपरदन*

हिमानी क्षेत्रों में हिम-घर्षण के द्वारा हिमानियां मलबा बहाकर घाटियों में जमा कर देती हैं जिससे भूमि क्षरण होता है। यह क्रिया मुख्यत: हिमालय क्षेत्रों में ही होती है।

- देश में बंजर भूमि का सर्वाधिक क्षेत्र **मध्य प्रदेश** राज्य में है।
- देश में लवणीय एवं क्षारीय मृदा का सर्वाधिक क्षेत्र **गुजरात** राज्य में है।
- पवन के अपरदन द्वारा निर्मित बंजर भूमि का सर्वाधिक क्षेत्रफल **राजस्थान** राज्य में है।
- जल के अपरदन द्वारा निर्मित बंजर भूमि का सर्वाधिक क्षेत्रफल **मध्य प्रदेश** राज्य में है।
- देश में अवनयित वन क्षेत्र सबसे अधिक **मध्य प्रदेश** राज्य में है।

## भूमि अपक्षरण से हानियां (Disadvantages of Soil Erosion)

विभिन्न प्रकार से होने वाले भूमि अपक्षरण के संयुक्त प्रभावों का राष्ट्रीय योजना समिति (1948) ने निम्नलिखित संक्षिप्त विवरण दिया है—

- भीषण तथा आकस्मिक बाढ़ों का प्रकोप।
- सूखे की लम्बी अवधि जिसका प्रभाव नहरों पर पड़ता है।
- जल के अतिरिक्त स्रोतों पर प्रतिकूल प्रभाव जिससे कुओं तथा नालों की सतह नीची हो जाती है और सिंचाई में कठिनाई होती है।
- नदियों की तह में बालू का जम जाना जिससे नदी की धारा में परिवर्तन होता रहता है और नहरों तथा बन्दरगाहों का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।
- उच्च कोटि की भूमि नष्ट हो जाने से कृषि का उत्पादन कम होता जाता है।
- नदियों के किनारे के भूमि क्षरण से खेती योग्य भूमि में कमी पड़ने लगती है।

**तालिका 18.2: मानवकृत मृदा अपरदन द्वारा प्रभावित क्षेत्र**

| मृदा के अवनयन का प्रकार | प्रभावित क्षेत्र (मिलियन हे.) में | प्रतिशत में |
|---|---|---|
| जल अपरदन | 148.9 | 45.3 |
| वायु अपरदन | 13.5 | 4.1 |
| रासायनिक अवनयन (पोषक तत्वों का नाश और लवणीकरण) | 13.8 | 4.2 |
| भौतिक अवनयन (जलमग्नता) | 11.6 | 3.5 |
| कुल (प्रभावित क्षेत्र) | 187.8 | 57.1 |

## मृदा की सुरक्षा के उपाय (Remedies for Soil Conservation)

मृदा के क्षरण को रोकने के लिए निम्न उपाय काम में लाना आवश्यक है—

1. पहाड़ी ढालों पर बंजर भूमि में और नदियों के किनारे उपयोगी वृक्षारोपण किया जाये तथा पशुओं की चराई पर नियन्त्रण रखा जाये। कम पानी वाले क्षेत्रों में ढालू भागों की ओर बक्सेनुमा गड्ढे बनाकर भी वृक्षारोपण किया जा सकता है।
2. जोते हुए क्षेत्रों का रक्षात्मक आवरण बनाए रखने के लिए फसलों का हेर-फेर (rotation of crops) और भूमि कुछ समय के लिए परती तथा खुली रखना वांछनीय है। यह हेर-फेर दो फसली या तीन फसली हो सकता है, जिससे एक फसल द्वारा नष्ट किये गये रासायनिक तत्वों की पूर्ति दूसरी या तीसरी फसल से पूरी की जा सके। खेतों की मेड़ एवं ढालू भूमि की ओर समोच्च बन्ध बनाते समय उस ओर जल प्राप्ति के अनुसार वृक्ष या झाड़ियों की कतार लगाई जानी चाहिए।
3. बहते हुए जल का वेग रोकने के लिए खेतों में मेड़बन्दी करना, ऊंची भूमि पर पतली खेती और मैदानों में टेढ़ी-मेढ़ी खेती की पद्धति अपनाना आवश्यक है। जिससे जल का बहना रुककर उपजाऊ मृदा वहीं पड़ी रहे।
4. बहते हुए जल की मात्रा और भारीपन में कमी करना आवश्यक है। इसके लिए (अ) पहाड़ियों के ढाल पर अथवा ऊंचे-नीचे क्षेत्र में बहते हुए जल का संग्रह करने के लिए छोटे-छोटे तालाबों का बनवाना आवश्यक है। (ब) बाढ़ के समय नदियों का अतिरिक्त जल रोके रखने के लिए विशाल जलाशय अर्थात् जल सम्भरण तैयार कराये जायें एवं चैक-डैम बनाये जायें। (स) खेतों पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर ऐसे मेंड़ बांध बनवाये जायें जो एकत्रित जल को अनेक भागों में बांटकर जल का वेग कम कर दें। इससे उस भूमि की उपजाऊ मृदा बहकर जाने से रुक जायेगी। ऐसे सभी क्षेत्रों की सीमा पर उपलब्ध भूमि की नमी से वहाँ वृक्षारोपण किया जाना चाहिए।
5. मृदा के कटाव को रोकने के लिए खेतों के ढाल के विपरीत तिरछी खाइयां बनायी जाय।

6. देश के सभी भागों में गांव, कस्बों, नगरों के बाहर पशुओं के चराने के लिए निश्चित भूमि में चरागाहों का विकास किया जाये। उन्हें अन्य क्षेत्रों में भटकने से रोका जाये तथा उन्हें चारागाहों में चराया जाये।
7. जल द्वारा होने वाली मृदा के क्षरण को रोकने हेतु—
   - भूमि को जोतने के बाद उसे वनस्पति से ढककर तेज बूंदों के आघात से बचाया जा सकता है।
   - भूमि पर ही पड़ी रहने वाली वनस्पति को स्वत: सड़ने दिया जाए जिससे भूमि की जल-ग्रहण करने की क्षमता में वृद्धि होकर मृदा का कटाव रुक सकेगा।
   - खेतों में लगातार पौधे या दालें बोने से भी मृदा का कटाव रुकेगा।
8. वायु द्वारा किये जाने वाले क्षरण को रोकने के लिए—
   - उन खादों अथवा रसायनों एवं मल्च का प्रयोग किया जाये जिनसे भूमि की जल-ग्रहण शक्ति बढ़ती है और भूमि चिपचिपी हो जाती है।
   - बोये और बिना बोये खेतों को बारी-बारी से काम में लाया जाये जिससे बोये हुए खेतों की ढीली भुरभुरी मृदा, जो वायु द्वारा उड़ायी जाये, दूसरे खेत में एकत्रित हो जाये और मृदा का नष्ट होना रुक जाये।
   - मरुस्थलीय क्षेत्र में मृदा को उड़ने से रोकने के लिए 1½-2 मीटर ऊंची लोहे की चादरें वायु चलने की दिशा में लगा दी जाये। इससे उड़ती हुई मृदा रुक जाती है। इन बालूका स्तूप में वनस्पति लगायी जाये। इस प्रकार के प्रयास राजस्थान में किये गये हैं जिसमें काज़री जोधपुर का मुख्य योगदान है।

## अध्याय सार संग्रह

**प्रमुख मृदा**

1. **मृदा का नाम** — **जलोढ़**
   - **विस्तार क्षेत्र** — उत्तर का विशाल मैदान एवं तटवर्ती मैदान
   - **प्रचुरता** — पोटाश
   - **कमी** — फास्फोरस नाइट्रोजन एवं जैविक तत्व
   - **फसल** — चावल एवं गेहूं
   - **अन्य** — नई जलोढ़ मृदा खादर तथा पुरानी जलोढ़ मृदा बांगर कहलाती है।
2. **मृदा का नाम** — **काली मृदा/कपासी मृदा/रेगूर**
   - **विस्तार** — महाराष्ट्र, दक्षिण पूर्वी गुजरात, प. मध्य प्रदेश, उत्तरी कर्नाटक, उत्तरी आन्ध्र प्रदेश, उ.प्र. तमिलनाडु, दक्षिण पूर्वी राजस्थान
   - **प्रचुरता** — लोहा, एल्युमिनियम, मैग्नेशियम एवं चूना
   - **कमी** — नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं जैविक पदार्थ
   - **फसल** — कपास
   - **अन्य** — इस मृदा का निर्माण लावा पदार्थों के विखण्डन से हुआ है। मृदा के काले होने का मुख्य कारण लोहा एवं एल्युमिनियम के टिटानीफेरस मैग्नेटाइट यौगिक की उपस्थिति है, मृदा काफी उपजाऊ होती है एवं जल धारक क्षमता अधिक होती है।
3. **मृदा का नाम** — **लाल एवं पीली मृदा**
   - **विस्तार** — प्रायद्वीपीय भारत जैसा तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा एवं झारखण्ड के संथाल, परगना एवं छोटा नागपुर पठार में।
   - **कमी** — नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा ह्यूमस
   - **फसल** — मोटा अनाज, दलहन एवं तिलहन
   - **अन्य** — लोहे के आक्साइड मिले होने के कारण इनका रंग लाल है।
4. **मृदा का नाम** — **लैटराइट मृदा**
   - **विस्तार** — पूर्वी॰ एवं पश्चिमी घाट पर्वत, राजमहल का पहाड़ी क्षेत्र, कर्नाटक, उड़ीसा के पठारी क्षेत्र, मेघालय के पठार।
     नोट—सर्वाधिक केरल राज्य में।
   - **कमी** — चूना, नाइट्रोजन, पोटाश, ह्यूमस
   - **फसल** — चाय, काफी, मसाले, नारियल
   - **अन्य** — चूने की कमी के कारण यह मृदा अम्लीय है और कम उपजाऊ मृदा की श्रेणी में आती है।
5. **मृदा का नाम** — **पर्वतीय या वनीय मृदा**

| | | |
|---|---|---|
| **विस्तार** | — | पर्वतीय क्षेत्रों में |
| **प्रचुरता** | — | जैविक तत्वों की |
| **कमी** | — | पोटाश, फास्फोरस एवं चूने की कमी |
| **फसल** | — | बागान कृषि जैसे चाय, कहवा, आदि मसाले एवं जल |
| **अन्य** | — | अपरदन की समस्या से प्रभावित एवं मृदा अम्लीय होती है। |
| **6. मृदा का नाम** | — | **मरूस्थलीय मृदा** |
| **विस्तार** | — | पश्चिम राजस्थान |
| **प्रचुरता** | — | बलुई मृदा जिसमें लोहा एवं फास्फोरस |
| **कमी** | — | नाइट्रोजन एवं ह्यूमस |
| **फसल** | — | मोटे अनाज जैसे ज्वार, बाजरा, रागी आदि तथा तिलहन |
| **अन्य** | — | यह क्षारीय मृदा है। |
| **7. मृदा का नाम** | — | **लवणीय एवं क्षारीय मृदा/ रेह/ ऊसर या कल्लर** |
| **विस्तार** | — | द. पंजाब, द. हरियाणा, पश्चिमी राजस्थान, केरल तट एवं सुदंरवन क्षेत्र |
| **प्रचुरता** | — | सोडियम, पोटैशयम, और मैग्नीशियम और सोडियम क्लोराइड |
| **कमी** | — | नाइट्रोजन एवं चूना |
| **फसल** | — | नारियल के पेड़ों की अधिकता |
| **अन्य** | — | यह क्षारीय मृदा है। |